वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

MARCH-2024

स्वानुभूतिप्रकाश

प्रकाशक :
श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
भावनगर - ३६४ ००१.

आखिरमें जीवको कौनसी कमाई करनी है?

-पू. भाईश्री शशीभाई

'आखिरमें जीवको कौनसी कमाई करनी है यह अपने आपसे पूछनेकी जरूरत है।' लीजिये ठीक! आरामसे यदि कोई चर्चा करने योग्य या विचार करने योग्य बात है तो यह है कि, आखिरकार जीवको कमाना क्या है? पैसे कमाने हैं या सुख-शांतिकी कमाई करनी है? यह बताईये चलो। विश्वके अंदर हिन्दुस्तानकी गिनती तो गरीब देशोंमें होती है। Poor countryमें गिना जाता है। जबकि western countries और european countries अमरिका आदिकी गिनती तो धनाढ्य देशोंमें होती है। वहाँ पर गरीबसे गरीब आदमीके पास भी गाड़ी और अन्य-अन्य सुविधाएँ प्राप्त होती है। फिर भी उन्हें पूछा जाये कि, आप कितने सुखी हैं? हालाँकि वे लोग सुखी नहीं हैं यह बात आज साबित करनेकी भी जरूरत नहीं है। वहाँके मानसिक रोगियोंके आँकड़ोंसे यह बात जगप्रसिद्ध है। Statistics को देखे तो अधिकसे अधिक पागलोंकी सँख्या वहाँ पर है। सबसे ज्यादा heart diseaseके मरीज़ोंकी संख्या वहाँ पर है।

बायपास सर्जरी करानेवाले दस-दस हज़ार मरीज़ वहाँ अस्पतालमें होते हैं। हिन्दुस्तानमें ऐसा कोई अस्पताल नहीं है कि जहाँ दस हज़ार मरीज़ोंकी बायपास सर्जरी करनी हो। यह तो एक अमरिकन बुक पढ़ी थी। आर्टरी ब्लॉकेज आया था तब एक बुक पढ़ी थी। जैसे एक आदमीको कोई इलाजका प्रयोग करना था तो मरीज़ोंकी संख्या पूछी थी तो पता चला कि, वहाँ बायपास सर्जरीके लिए दस हज़ार मरीज़ थे उस अस्पतालमें। इतनी बड़ी तादातमें heart disease वहाँ होते हैं। मानसिक रोगसे उत्पन्न होनेवाले शारीरिक रोगोंकी संख्या भी बहुत बड़ी है। और तो और हीप्पी लोग भी वहीं पाये जाते हैं, हिन्दुस्तानमें नहीं होते। वे सब कौन हैं? जो संपत्तिकी प्राप्तिके पश्चात् अपना मानसिक संतुलन खो बैठे हैं।

अतः वास्तवमें आपको कमाना क्या है? यह सवाल है। जो पैसे आदि संयोगकी कमाई है सो तो प्रारब्ध अधीन है, अक्कल-होंशियारीके अधीन नहीं है। अब तुझे अगर वाकई बुद्धिका सद्उपयोग करना है तो आत्मकल्याणमें उसका उपयोग कर! तो तुझे आत्मशांतिकी कमाई होगी और इतनी बेहद आत्मशांति उत्पन्न होगी कि, सादि अनंतकाल तक इस शांतिको छोड़कर तू अशांतिमें नहीं आयेगा। अब, इतनी बड़ी कमाई तुझे पहले करनी है या दूसरी-दूसरी अशांतिकी कमाई पहले करनी है? यह (पैसे आदि)की कमाई तो अशांतिकी कमाई है, जबकि यह तो आत्मशांतिकी कमाई है। तुझे कौन-सी करनी है?

'उघाड न्याय नेत्रने निहाळ रे निहाळ तू, ते प्रवृत्ति बाळ तू' ऐसा कहा कि नहीं कहा? जलानेका कहा। अशांतिकी प्रवृत्तिको जला दे तू। फिर 'निवृत्ति शीघ्रमेव धारी ते प्रवृत्ति बाळ तू' आत्मकल्याण हेतु निवृत्ति ले और संसार प्रवृत्तिको जला दे। तेरे संसारको जला दे ऐसा कहते हैं। इसमें किसीको डरने जैसा

(अनुसंधान पृष्ठ संख्या १३ पर..)

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५५०, अंक-३१५, वर्ष-२६, मार्च-२०२४

श्रावण शुक्ल ७, रविवार, दि. २४-७-१९६६, योगसार पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन अंश, गाथा-१००से१०३ प्रवचन-४३

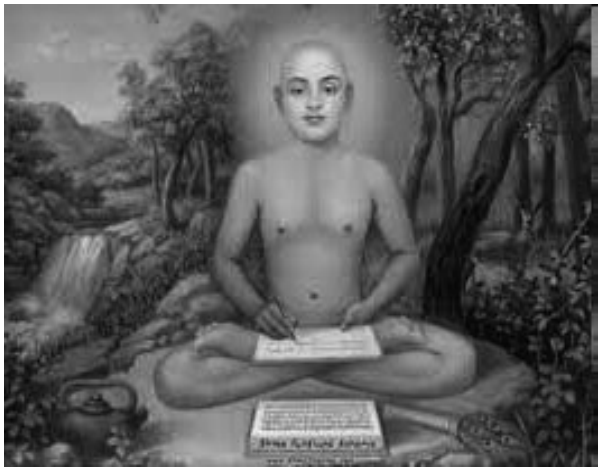

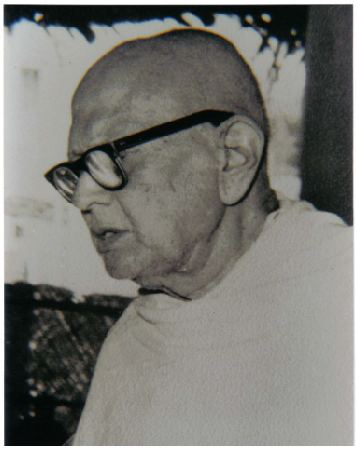

कषाय के उदय को रोग जानता है। देखो, धर्मी तो कषाय के राग को रोग जानता है। वह रोग भी पुरुषार्थ से मिटता है - ऐसा जानता है। मेरे पुरुषार्थ की गति इतनी विपरीत है, इसलिए होता है। मेरे स्वभाव में उसका मैल नहीं है, फिर भी ज्ञानी जानता है कि यह राग (मेरी कमजोरी के कारण हुआ है)। कर्म (मुझे) राग करावे तो कर्म के ऊपर द्वेष आता है। समझ में आया। आहा...हा...! मार डाला! कर्म के ऊपर द्वेष आया परद्रव्य... यह कर्म कुछ कमजोर पड़े न तो ठीक; फिर उसके ऊपर राग आया। सूक्ष्म व्याख्या है, राग-द्वेष की, हाँ! सूक्ष्म व्याख्या है। सत्य की स्थापना करना है न? सत् ऐसा है, रागी को, हाँ! केवली की बात नहीं है - ऐसा सत् है, वहाँ भी जरा राग का अंश है और ऐसा नहीं होता (- ऐसा कहे) वहाँ भी जरा कषाय के द्वेष का अंश है। भगवान तो वीतराग रस स्वरूप है। समझ में आया?

एक नय को मुख्य करके, दूसरे को गौण करके स्थापन करना। छद्मस्थ है न? राग साथ में है इसलिए... हाँ! वस्तु के लिए नहीं। केवली सब कहते हैं और सब स्थापित करते हैं। रागी प्राणी (को) राग है न! ऐसा नहीं होता, भाई! ऐसा मार्ग नहीं होता (- ऐसा कहे उसमें) इतना भी अन्दर प्रशस्त कषाय का अंश है। वीतरागमार्ग में इतना वह पोषाता नहीं, भाई! वीतरागरस ऐसा प्रभु! आँख में कदाचित् छोटा कण जरा समाये, यह समाये नहीं इसे - ऐसा ज्ञायकस्वरूप... दूसरा तो राग-द्वेष कहाँ रहा परन्तु एक नय को मुख्य करके निश्चय ऐसा है (- ऐसा स्थापित करे) 'निश्चय नयाश्रित मुनिवरो प्राप्ति करे निर्वाण की' यह - विकल्पवाले नय नहीं,

हाँ! दूसरे अबद्ध, बद्ध... यह तो अबद्ध भी इसमें वस्तु यह बराबर है परन्तु यहाँ जहाँ स्थापना में जरा वीर्य, वीर्य जरा वहाँ रुकता है और इतना जरा राग का अंश, वीतरागरस में वह भी नहीं पोषाता है। चल नहीं सकता है - ऐसा स्वरूप है। भाई! समझ में आया?

कहते हैं, भगवान आत्मा गृहस्थदशा में रहा होने पर भी, वह स्वयं कार्यों में उसकी लीनता / एकाकार नहीं। समझ में आया? और राग के उदय के इतने भाग को भी समपने के साथ मिलाने से उस विसमता का अंश, रोग जानता है। समझ में आया? मोक्ष का उपाय मूल में एक सम्यग्दर्शन की शुद्धि है। वीतराग यथाख्यात चारित्र और केवलज्ञान की प्राप्ति का यही उपाय है। भगवान आत्मा उस राग के अंश के मैल आदि द्वेष आदि उन्हें स्वभाव से जहाँ भिन्न जाना है - ऐसे सम्यग्दर्शन में जहाँ आत्मा का आश्रय है - ऐसा समभावी भगवान सम्यक्... सम्यक्... सम्यक्... प्रतीति में आया है, उसके जोर से उसे वीतरागचारित्र और केवलज्ञान के लाभ का यह सम्यग्दर्शन ही उपाय है - ऐसा यहाँ कहा है। समझ में आया? आहा...हा...!

यह अभी अपने भाई ने गाया है, नहीं? आनन्दघनजी का गाया है न? सेठिया ने कुछ गाया है, एक शब्द लिखा है। 'गगन मण्डल में' हाँ! आया है या नहीं? उसमें कहीं आया है। आनन्दघनजी ने यह गाया है, आनन्दघनजी... 'गगन मण्डल में गौवा विहाणी, वसुधा दूध जमाया, माखन था सो विरला रे पाया - सन्तों, छाछ जगत भरमाया.... गगन मण्डल में अधबिच कुआ, वहाँ है अमी का वासा, सुगुरा होवे सो भर-भर पीवै सन्तों, नूगुरा जावे प्यासा अबधु, सो जोगी गुरु मेरा, इस पद का करे रे निवेणा'। 'गगन मण्डल में गौवा विहाणी, वसुधा दूध जमाया, माखन था सो विरला रे पाया, पण छाछ जगत भरमाया'। दुनिया को छाछ मिली है। यह पुण्य-पाप की क्रिया और यह... मक्खन तो ज्ञानी खा गये अन्दर से। आहा...हा...!

इसमें कहीं है, हाँ! लो, यही आया। एक ही लाईन है। सेठिया ने बनाया है 'आत्म गगन में ज्ञान ही गंगा, जामे अमृत वासा, आत्म गगन में ज्ञान ही गंगा, ज्ञान ही गंगा, जामे अमृतवासा; सम्यग्दृष्टि भर-भर पीवै सन्तों, मिथ्यादृष्टि जाय प्यासा, अबधु, सो जोगी रे गुरु मेरा, इन पद का करे रे निवैरा'। आनन्दघनजी का बड़ा लम्बा है। सब एक-एक देखा है। पहले (संवत) १९७८ की साल पहले, हाँ! एक-एक आनन्दघनजी के पद-वद सब खूब देखे हैं।

यह अन्तर आत्मा की बात, यह अलौकिक बात है। भगवान समरसी प्रभु! आहा...हा...! ऐसे समरस में, ज्ञान में ऐसा विषय बदल जाये कि यह ठीक, अठीक, कहते हैं कि यह राग-द्वेष है। वह स्वरूप में पोषाते नहीं हो सकते हैं। उनका जिसे त्याग है, वह वास्तव में परिहारविशुद्धिचारित्र है। अध्यात्म से लिया है न?

तत्त्वार्थसार में लिया है, अन्तिम उदाहरण दिया है। जहाँ प्राणियों के घात का विशेष रूप से त्याग हो और चारित्र की शुद्धि हो, वह परिहारविशुद्धिचारित्र है। यह तत्त्वार्थसार में (आता है)। अमृतचन्द्राचार्य का तत्त्वार्थसार है न? अपने व्याख्यान में तत्त्वार्थसार पढा गया है। कहो, समझ में आया इसमें? यह अत्यन्त संक्षिप्त करके (कहा) अब सब पूरा होने आया है। अब, यथाख्यात, १०३ (गाथा)।

यथाख्यात चारित्र

सुहुमहँ लोहहँ जो विलउ सो सुहुमु वि परिणामु।
सो सुहुमु वि चारित्त मुणि सो सासय-सुह धामु ।१०३।

सूक्ष्म लोभ के नाश से, सूक्ष्म जो परिणाम।
जानों सूक्ष्म चारित्र वह, जो शाश्वत सुख धाम।।

अन्वयार्थ - (**सुहुमहँ लोहहँ जो विलउ**) सूक्ष्म लोभ का भी क्षय होकर (**जो सुहुम वि परिणामु**) जो कोई सूक्ष्म वीतरागभाव होता है (**सो सुहुमु वि चारित्त मुणि**) उसे सूक्ष्म या यथाख्यात चारित्रजनों (**सो सासय सुह धामु**) वही अविनाशी सुख का स्थान है।

उसमें सूक्ष्मसाम्पराय लिखा है, ऐसा नहीं। इसमें

ऐसा है न? हाँ, परन्तु सूक्ष्म ऐसा नहीं। यह सूक्ष्म चारित्र अर्थात् यथाख्यातचारित्र। पहले अपने आया था, उसमें भूल की। पहले शब्द ऐसा था, देखो! 'सूक्ष्म लोभ के नाश से, होय शुद्ध परिणाम, वह सूक्ष्म सम्पराय है, चारित्रसुख का धाम' - ऐसा नहीं। अपने है इसमें? सूक्ष्म चारित्र अर्थात् यथाख्यातचारित्र, ऐसा। इन्होंने इसमें सूक्ष्म सम्पराय जोड़ दिया है। सूक्ष्म शब्द पड़ा है न, जहाँ सूक्ष्म लोभ का नाश होता है, वहाँ सूक्ष्म सम्पराय होता है, किसका? सम्पराय तो राग का नाम है, यह सब खोटा। मूल तो ऐसा है।

सुहुमहँ लोहहँ जो विलउ सो सुहुमु वि परिणामु।
सो सुहुमु वि चारित्त मुणि सो सासय-सुह धामु ।१०३।

यथाख्यातचारित्र की बात करते हैं। भगवान आत्मा में... यह अन्तिम कड़ियाँ हैं न (इसलिए) ठेठ तक लेकर, यथाख्यात तक ले (जाकर), स्वयं भगवान ब्रह्मा और विष्णु स्वयं ऐसा करके पूरा करेंगे। सूक्ष्म लोभ का भी क्षय होकर.... यह चारित्र की उत्कृष्ट व्याख्या - यथाख्यात्चारित्र। यथाख्यात जैसा स्वरूप अन्दर प्रसिद्ध है - अकषाय, अविकारी, वीतराग, समभाव (स्वरूप)- ऐसी पर्यायमें यथा-प्रसिद्धि वीतरागरूप होना, उसे यथाख्यातचारित्र कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

दसवें गुणस्थान में जो सूक्ष्म लोभ रहता है, उसका भी विलय होकर **'सुहुमु वि परिणामु'** - जो कोई सूक्ष्म वीतरागभाव होता है... ऐसा लेना। सूक्ष्म लोभ का अंश जो दसवीं भूमिका में - गुणस्थान में होता है, उसका नाश होकर जो सूक्ष्म परिणाम प्रगट होता है, एकदम वीतराग परिणाम (प्रगट होता है), उसे सूक्ष्म अथवा यथाख्यातचारित्र जानो। उसे सूक्ष्म-बारीक वीतरागी चारित्र पर्याय जानो। सूक्ष्म सम्पराय नहीं, समझ में आया? वह तो राग है, सम्पराय तो राग है। वही अविनाशी सुख का स्थान है। लो! आहा...हा...! एकदम यथाख्यात है न! ऐसी यथाख्यातरूपी निर्मल वीतरागी पर्याय का तो बिम्ब आत्मा है, अकेला अकषायरस, समझ में आया?

ऐसे भगवान आत्मा के अन्तर अवलम्बन में से पूर्ण वीतरागता प्रगटी और जहाँ अंश लोभ का भी था, उसका व्यय हुआ, वीतरागता का उत्पाद हुआ, वीतरागस्वरूप ध्रुव तो कायम पड़ा है। यहाँ विलय आया न! और परिणाम है, इसलिए उत्पाद-व्यय कहा। समझ में आया? भगवान आत्मा ध्रुवस्वरूप है, वह तो अकेला समरसी स्वभाव है। समरसी ज्ञातादृष्टा, वह समरसी स्वभाव है। उसमें जो लोभ का अंश बाकी था, उसका विलय करके - व्यय करके और वीतरागी पर्याय का उत्पाद होना, उसे यथाख्यातचारित्र कहते हैं। वह साक्षात् मोक्ष का कारण है। कहो, इसमें समझ में आया? यह चारित्र का भेद है और यह प्रकार है - ऐसी बात दूसरे में नहीं हो सकती, क्योंकि गुण की शुद्धि की वृद्धि के प्रकारों के यह सब नाम हैं। पर्यायशुद्धि होती है, वह बात अन्यत्र नहीं हो सकती। समझ में आया? समय-समय की शुद्धि का यहाँ तो मिलान करना है।

जिसे आत्मस्वभाव शुद्ध ध्रुव चैतन्य, जिसे अवलम्बन दृष्टि-ज्ञान में आया और उसका आश्रय लेकर जिसने वीतराग समभाव... समभाव... ओ...हो...! समझ में आया? दसवें गुणस्थान की भूमिका में अबुद्धिपूर्वक जरा राग रहा और उसका नाश होकर वीतरागपर्याय की प्रगट प्रसिद्धि; जैसा स्वभाव है, वैसी पर्याय की प्रसिद्धि अकषाय की हुई वह सूक्ष्म यथाख्यातचारित्र (जानो)।

वही अविनाशी सुख का स्थान है। लो! अविनाशी सुख का स्थान वह चारित्र है। उस चारित्र का प्रकार है। अन्य कहते हैं, अपने राम... राम... राम... राम... भगवान... भगवान... भगवान... भगवान करो। मोक्ष हो जायेगा समझ में आया? (अन्य कहते हैं) राम से साक्षात्कार... वह राम यह। 'निजपद रमै सो राम कहिये' समझ में आया? आनन्दघनजी ने कहा है, भाई! 'निजपद रमैं सो राम कहिये, कर्म कसे सो कृष्ण कहिये'। यह

तो 'निजपद रमैं सो राम कहिये'। अपने में आता है न? कलश में (आता है) आत्माराम। जैसे बाग में रमते हैं न? ऐसे भगवान अपने आनन्द बाग में अन्तर रमे - शुद्धता के पर्याय की विशेष प्रगटता हो, उसे आत्मबाग में रमणता, उसे यथाख्यातचारित्र कहते हैं। वह चारित्र साक्षात् मोक्ष का कारण है वह अविनाशी सुख का कारण है। समझ में आया?

सुख आत्मा का गुण है, उसे चारों घातिकर्मों ने रोक रखा है.... घाति (कर्म) तो निमित्त है, हाँ! रोक रखा है अर्थात् कोई द्रव्य रोकता नहीं, अपनी पर्याय में स्वयं भावघाति किया, तब द्रव्यघाति को निमित्त कहा जाता है। यह सोलहवीं गाथा में है, प्रवचनसार की सोलहवीं गाथा - स्वयंभू की गाथा में यह है - द्रव्य, भाव, घातिकर्म। भाई! आता है न? सोलहवीं। कहो समझ में आया?

परन्तु मुख्यरूप से उसे रोकनेवाला मोहकर्म है। ऐसा लिया। असावधानी... उसकी चर्चा अभी पण्डितों में चलती है। दूसरे एक कहते हैं कि चार कर्म है, एक कहते हैं मोहकर्म है। भाई! पूरा अनन्त आनन्द, अनन्त आनन्द, तो केवलज्ञान होने पर प्रगट होता है। बारहवें में अनन्त सुख प्रगट होता है, सुख प्रगट होता है, अनन्त नहीं प्रगट होता - ऐसी बड़ी चर्चा दो व्यक्तियों में चलती है। कैलाशचन्द्रजी और अजितकुमार!

यहाँ तो आत्मा का अनुभव, सम्यग्दर्शन होने पर अतीन्द्रिय आनन्द का अंश चौथे (गुणस्थान में) प्रगट होता है। उस पाँचवें में आनन्द का अंश बढ़ता है, छठवें में बढ़ता है, सातवें में बढ़ता है, आठवें, नौवें, दशवें में बढ़ते हुए बारहवें (गुणस्थान में) आनन्द पूर्ण हो जाता है। अनन्त नहीं होता। समझ में आया? जहाँ अन्दर केवलज्ञान और केवलदर्शन वह अनन्त वीर्य जहाँ प्रगट हुए, उस आनन्द को अनन्त उपमा दी जाती है। अनन्त आनन्द प्रगट हुआ। समझ में आया? ऐसे अनन्त आनन्द का कारण, यह आत्मा का मोक्ष का मार्ग-उपाय है। स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव। समझ में आया?

यह बात ली है। हाँ! क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव चार अनन्तानुबन्धी कषाय और दर्शनमोह की तीन प्रकृतियों का जब क्षय कर डालता है, तब क्षायिक सम्यक्त्व और स्वरूपाचरणचारित्र प्रगट हो जाता है। ऐसा लिखा है, भाई! यह बात सत्य है। इसका विवाद, अभी विवाद है। दूसरे (कहते हैं) स्वरूपाचरणचारित्र चौथे में नहीं होता, पाँचवें में नहीं होता, छठें में नहीं होता। अरे...! भगवान! पर के आचरण में गुणस्थान बढ़ गया? आहा...हा...! समझ में आया?

भगवान आत्मा अनादि काल से राग-द्वेष की, अनन्तानुबन्धी की तीव्रता के परिणाम में.... आचरण था, तब श्रद्धा, मिथ्या, ज्ञान मिथ्या, और आचरण मिथ्या था। ऐसा भगवान आत्मा अपने शुद्धस्वरूप का आचरण, दृष्टि हुई, तब प्रतीति हुई, तब ज्ञान हुआ कि यह आत्मा है, तब स्वरूप के आचरण का अंश जगा, कणिका जगी। समझ में आया? आत्मस्वरूप के आचरण की कणिका जगी। पूर्ण आचरण की दशा यथाख्यातचारित्र (है)। समझ में आया? उसका अंश चारित्र यदि चौथे में प्रगट न हो तो आगे वह बढ़ नहीं सकता। समझ में आया?

अरे...! तत्त्व के निर्णय का विषय होना चाहिए और वह भी समभाव से, शान्ति से वीतरागी चर्चा होना चाहिए। उसके बदले एक दूसरे को झूठा ठहरने की बात - ऐसा नहीं होता, भाई! समझ में आया? यह तो वीतरागी चर्चा है, समभाव से चाहिए। किसी की भूल हो तो भी उसे दूसरे प्रकार से और द्वेषी मानकर या विरोधी मानकर उसे कहना यह कोई सज्जनता की रीत है? होता है, यह वीतरागमार्ग है भाई! इसमें तो शान्ति से, न्याय से जैसे हो वैसे निर्णय करना चाहिए। जो सत्य निकले, उसे स्वीकार करना चाहिए, उसमें कहाँ यह किसी के पक्ष की बात है।

यह बात देखो... भाई ने लिखी है - टोडरमलजी ने और भाई ने लिखी है। गोपालदासजी वरैया ने। जैन

सिद्धान्त प्रवेशिका और राजमलजी ने टीका में लिखी है और भाई ने लिखी है - समयसार नाटक में लिखा है परन्तु होता है न? जहाँ आत्मा स्वरूप से पूर्णानन्द प्रभु भासित हुआ, वहाँ उसमें स्थिरता का अंश न आवे तो स्थिरता के बिना यह क्या चीज है (- उसकी) एकदम श्रद्धा हो गयी? परन्तु श्रद्धा के साथ में ज्ञान में कुछ हुआ है या नहीं? स्थिरता के बिना... तीनों के अंश आये हैं या नहीं साथ में? समझ में आया?

वास्तव में सम्यग्दर्शन तो 'सर्व गुणांश वह समकित' है। भगवान अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है, उसकी प्रतीति नहीं थी, ज्ञान-ज्ञायकपने की उसे (प्रतीति नहीं थी); उसे प्रतीति थी राग-द्वेष-विकार और परसत्ता के स्वीकार में। है स्वयं इसलिए कहीं उसका अस्तित्व तो स्वीकारना चाहिए, इसलिए उसका अस्तित्व यह (स्वरूप) भासित नहीं हुआ तो यहाँ राग-द्वेष में उसने अस्तित्व स्वीकार किया। वहाँ सब ही स्वीकार। श्रद्धा वहाँ, ज्ञान वहाँ, आचरण वहाँ। अब गुलाँट खायी श्रद्धा ने ओ...हो...! मेरा परमात्मा पूर्ण प्रभु तो मैं ही हूँ - ऐसे निज कारणपरमात्मा की दृष्टि, अवलोकन की श्रद्धा की हुई, वहाँ भगवान! कुछ स्थिर हुए बिना किस प्रकार हुई? आहा...हा...! यह स्थिरता है, उसका नाम स्वरूपाचरणरूप में कहते हैं। कहीं शास्त्र की भाषा में सीधा नहीं निकले परन्तु न्याय से तो समझना चाहिए न?

चारित्रमोह की कषाय की पच्चीस प्रकृति है। अनन्तानुबन्धी चारित्रमोहनीय की जब गयी, तब कुछ हुआ, चारित्र में कुछ हुआ या नहीं? भले उसे देशसंयम न कहो, सकल संयम नहीं। संयम के स्थानों के जो प्रकार गोम्मटसार में वर्णन किये हैं, उन अमुक स्थान तक में संयम नहीं कहलाता तो वह भले हो परन्तु किंचित स्थिरता प्रगटी ऐसा तो कहना पड़ेगा या नहीं। इसमें विवाद किसका? इसमें तकरार किसकी? भाई! किसकी होवे भूल, ख्याल में न होवे तो उसे इस प्रकार समझना चाहिए।

'सर्व जीव है ज्ञानमय' आया न अपने? सामायिक में... 'सर्व जीव ज्ञानमय' प्रभु ज्ञानमय है न प्रभु! यह तो एक समय की, एक समय की भूल, हाँ! एक समयमात्र भूल उसमें टिकती है, दो समय कभी भूल टिकती ही नहीं। भूल, पर्याय है। समझ में आया? आहा...हा...!

त्रिकाल भगवान अनन्त गुण से शाश्वत् तत्त्व अन्दर है। उसकी जहाँ दृष्टि हुई तो स्वरूपाचरणचारित्र साथ ही प्रगट होता है, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद भी साथ में आता है और प्रभुता का, एक प्रभुता नाम का गुण जो है, उसकी प्रभुता पर्याय में भी प्रभुता का अंश प्रगट होता है। ईश्वरता का अंश प्रगट होता है। ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव को स्वरूपाचरण होता है।

यह शक्तियाँ प्रगट होने पर जब ज्ञानी अपने उपयोग को अपने आत्मा में स्थिर करता है, तब ही स्वरूप का अनुभव आता है और अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। अविरत सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान में इस सुख का प्रगटपना हो जाता है। यह वस्तु है, उसे अतीन्द्रिय स्वभाव, स्वभाव है, उसका स्वाद न आवे तो उसकी श्रद्धा कहाँ हुई? खरगोश के सींग की श्रद्धा करनी है? कुछ वस्तु हो उसकी करनी है न? तो यह चीज आनन्द और ज्ञानमूर्ति पूर्ण है - ऐसा उसके ज्ञान-श्रद्धान में आये बिना, उसे आनन्द का स्वाद आये बिना, उसे सच्ची प्रतीति नहीं हो सकती। इसलिए सम्यग्ज्ञान में स्वरूपाचरण और आनन्द का अंश स्वाद में होता है, अनन्त गुण का अंश होता है। समझ में आया? उसे यहाँ विशेष पूर्ण हो, उसे यथाख्यात कहते हैं। पूर्ण स्थिरता और पूर्ण आनन्द उसे यथाख्यात कहते हैं। परम यथाख्यात तेरहवें (गुणस्थान में)। वह अनन्त आनन्द हो गया, अनन्त आनन्द हो गया। उसे परम यथाख्यात कहा है। वह यथाख्यातचारित्र साक्षात् मोक्ष का कारण है। विशेष कहेंगे....

(मुमुक्षु : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

*

परमागमसार बोल-८९ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईका प्रवचन

राग तो चुडैल और डाकिनी के समान है; राग से प्रेम करने से यह तुझे खा जायेगा - निगल जायेगा। पापरूपी राग की तो क्या बात, परंतु जिन्होंने शुभराग, हजारों रानियाँ छोड़कर, राजपाट छोड़कर, पंचमहाव्रत के शुभराग से प्रेम किया है - वे आनंदस्वरूप आत्मा को घायल करते हैं, उसकी हत्या करते हैं। वीतरागभाव धर्म है, किन्तु जो रागभाव से धर्म मनवाते हैं वे वीतराग के शत्रु हैं, पापी और मिथ्यादृष्टि हैं। ८९.

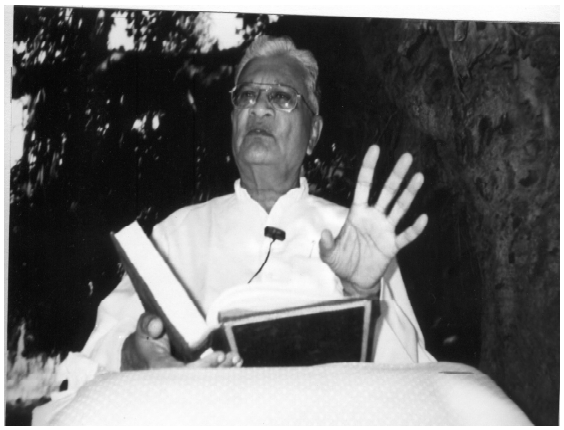

(परमागमसार, बोल - ८९) यहाँ कहते हैं कि **'राग तो चुड़ैल और डाकिनी के समान है;...'** लीजिए, ठीक! यहाँ सीधा यही कह दिया कि राग है सो चुड़ैल और डाकिनी के समान है। लोक में प्रेत योनियों में ये सारे नाम लिए जाते हैं, - डाकिनी, चुड़ैल, भूत, प्रेत, पिशाच, खवीस (इत्यादि)। बचपन में सब बातें सुनी हैं न! जिसका बचपन गाँव में बीता हो उसका सब सुना हुआ रहता है। लोग कहते हैं न कि भूत संचार हुआ! चुड़ैल, डाकिनी के लग जाने से भूताविष्ट हो गया, ऐसी-ऐसी कथाएँ बचपन में बहुत सुनने में आती थी। जैसे कोई स्त्री के लिए सुनते थे कि, वह डाकिनी है, चुड़ैल है...! ऐसा है और वैसा है। एक तो दिखाव उसका डरावना हो और किसी में प्रवेश कर लेती है, ऐसा कहलाता हो। वैसे तो किसी में प्रवेश नहीं होता किन्तु मन की कमजोरीवाले को ऐसा भ्रम हो जाता है कि मुझे ऐसा हुआ, वैसा हुआ, बाद में बहुत परेशान होता है। जब किसी जीव को भम्र हो जाता है कि मुझे डाकिन या चुड़ैल ने पकड़ लिया है, तो फिर वह बहुत दुःखी होता है। उसके चित्त का कोई ठिकाना नहीं रहता। चित्त इतना अस्थिर हो जाता है कि उसने क्या बोला? क्या खाया? कैसी चेष्टा की? यह खुद को ही पता नहीं रहता। पागलवत् अवस्था हो जाती है। वैसे (यहाँ) कहते हैं कि राग की रुचिवश जो राग से अभेदता करता है, तो डाकिनी ने तो उसे नहीं पकड़ा परंतु उसने डाकिन को पकड़ा है। उस पर पागलपन सवार होगा ही, ऐसा कहते हैं। पागलपन के अलावा इसका कोई नतीजा नहीं आयेगा।

राग है सो चुड़ैल और डाकिनी समान है। गुरुदेवश्री की शैली बहुत Powerful थी! तोप के गोले जैसी!! चाहे जैसा मिथ्यात्व का गढ़ क्यों न हो ! (इस) तोप के गोले से चूर-चूर हो जाये और इसकी एक-एक कंकरी को जैसे अलग कर दे!! पत्थर अलग करे दे, ऐसे नहीं किन्तु कंकरी को भी अलग कर दे!!

(कहते हैं) **'राग से प्रेम करने से यह तुझे खा**

जाएगा - निगल जाएगा।' यह डाकिनी खा जाती है - निगल जाती है ऐसा जो कहा जाता है न ! तो Actually डाकिनी कोई उसे काटती है, ऐसा कुछ नहीं होता परंतु (जिसको ऐसी कल्पना हो जाये) उसका शरीर गलने लगता है। भय और पागलपन के वश शरीर के जो कोष होते हैं वे गलने लगते हैं। अतः आदमी कृश होकर मरता है। तब ऐसा कहा जाता है कि डाकिनी उसे निगल गई या चुड़ैल उसे निगल गई, खा गई ! परंतु वास्तव में उसे कोई नहीं खा गया।

प्रश्न :- ऐसी प्रेत योनि होती है क्या ?

समाधान :- हाँ, प्रेत योनि है लेकिन लोग जैसा मानते हैं वैसा नहीं है कि वह किसी में प्रवेश कर ले। वह देव-योनि है - हलके देवों की योनी है। अपने यह मनुष्य में जैसे चमार, चांडाल आदि होते हैं न ! नीच जाति के मनुष्य होते हैं। वैसे उसमें वह नीच जाति के - एकदम हलकी जाति के व्यतंर देवों की जाति है। उनके आयुष्य बड़े-बड़े होते हैं, इसलिए आगे-पीछे सब जानते हैं, २०-२५ पीढ़ी तक की जानकारी होती है इसलिए वे भ्रम पैदा करते हैं। परंतु यह बात शास्त्रमें से बाहर आयी कि लोग डर के मारे उसे अलग प्रकार से समझने लगे। वरना वास्तव में ऐसा बनना अशक्य है। कोई आत्मा किसी दूसरे आत्मा में प्रवेश कर सके (यह नामुमकिन है)। किसी की देह में या किसी के आत्मा में कोई दूसरा आत्मा प्रवेश कर सके - यह वस्तु स्वरूप से बाहर है। परंतु अनादि से देहात्मबुद्धि से ग्रसित जीव डरपोक है, भयान्वित है। अंधेरा दिखे कि डरने लगे! तो फिर आभास हो इसमें डरे इसमें कौन-सी नई बात है? अरे! घन अंधेरा हो, एकांत हो, निर्जन स्थल हो, बस्ती का अभाव हो तो भी आदमी डरता है, फिर दूसरे (प्रसंग में नहीं) डरने का प्रश्न कहाँ रहता है? फिर तो उसे बहुत-सी कल्पनाएँ होगी।

प्रश्न :- स्वरूप-निर्णय सम्बन्धित सूक्ष्म अंतरजल्प - मैं ऐसा हूँ, मैं ऐसा हूँ, मेरा त्रिकाली स्वरूप ऐसा है - यह विकल्प भी क्या डाकिन जैसा है?

समाधान :- तो क्या उससे लगे रहना है ? वह डाकिन नहीं है ऐसा जानकर क्या उसे पकड़ रखना है? क्या करना है? (अरे !) निर्णय के लिए तो क्या निर्णय होने के पश्चात् और अनुभव के पहले जो अंतरजल्प वर्तता है, यह तो इसकी बात है। जीव का निर्णय भी हो चुका हो, भले ही अनुभव नहीं हुआ हो, तब उसे जो शुद्धात्म स्वभाव का अंतर-घोलन चलता है इसमें जो सूक्ष्म अंतरजल्प रहता है उसे भी छोड़ता है, जब तो शुद्धोपयोग में आना होता है न? फिर उसे पकड़े रहने का सवाल कहाँ है?

हकीकत में राग और ज्ञान के बीच भेदज्ञान में देखना क्या है? कि राग मलिन है। विष्टा थोड़ी-सी हो तो अच्छा, ऐसा है? ज्यादा विष्टा तो खराब है, विष्टा का पूरा डिब्बा हो जब तो खराब लेकिन थोड़ी-सी विष्टा हो तो कोई बात नहीं, उसे माथे पर चढ़ाओ !! ऐसे कोई चढ़ाता है क्या? उसे माथे पर नहीं चढ़ाया जाता। वैसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म राग हो तो (भी) उसका आदर करने का प्रश्न ही नहीं है। जो मलिनता है उसे तो धोना ही है (इसमें) दूसरी बात को अवकाश ही कहाँ है? लेकिन उस भाव में मलिनता भासित होनी चाहिए, दिखनी चाहिए वरना उसे नहीं छोड़ेगा। किसी न किसी बहाने मोह होगा - यह तो (स्वरूप) निर्णय का राग है न! यह (राग) तो निर्णय होने के बाद आत्मा संबंधित है न! आत्मा के साथ यह विकल्प संबंध रखता है न! यह कहाँ बाह्य पंचेन्द्रिय के विषय से संबंध रखता है? कहते हैं कि पंचेन्द्रिय के विषय से संबंधित अशुभराग या किसी भी जाति का राग - फिर चाहे शुद्धात्मा के विकल्प का (राग हो), लेकिन जाति तो इसकी राग की ही है या दूसरी कोई ? उसमें जो तत्त्व है (वह तो दोनों में समान है)। इसीलिए तत्त्वदृष्टि से उसे आस्त्रव कहा, तत्त्वदृष्टि से उसे बंध कहा! इसका तत्त्व क्या है? तत्त्व तो दोनों में एक ही है, तत्त्व दो नहीं है। तत्त्व दो नहीं

हुए, एक ही तत्त्व है।

एकदम स्वच्छ-सुगंधित ठण्डे पानी से नहाते हो तब कोई ऐसा कहे कि थोड़ी-सी विष्टा इसमें डाल दे तो आपको क्या दिक्कत है? ज्यादा कहाँ है? सिर्फ चम्मच भरकर डालनी है। आप पूरे हौज के पानी से नहाते हो, इसमें एक चम्मच डाल दे तो आपको क्या हरज़ा है? एक चम्मच ही, वह भी साथ में! एक चम्मच में भी सिर्फ विष्टा नहीं उसका पानी ही ले लो ! विष्टा भी नहीं, उसे मंद किया हुआ पानी! विष्टा तो फिर भी घनिष्ट होती है, यहाँ इसका भी प्रवाहीरूप कर दिया हो, बोलिये? मंद कर डाला हो फिर आपको क्या दिक्कत है? मंद पानी में आपको क्या दिक्कत है? अरे...! भाई उसका एक छींटा भी नहीं चाहिए। चम्मच तो क्या? उसका एक छींटा भी नहीं चाहिए!

(वैसे यहाँ राग की) जाति को तो पहचानना होगा कि नहीं? उसकी जाति सर्वप्रथम (स्वरूप) निर्णय के वक्त पहचानी जाती है। निर्णय उसको कहे कि जो स्वभाव जाति और विभाव जाति को पहचाने, जब तो उसे निर्णय कहते हैं। उसकी जाति को पहचाने बिना निर्णय हुआ है, यह बात में दम नहीं है। एक बार इसकी जाति परख ली बाद में यह इसका राग है, मंद है न! ऐसा कोई भी बहाना नहीं चलता। किसी भी बहाने वह बात का स्वीकार नहीं कर सकते। इसीलिए तो एकदम ज़ोर देकर कहा कि भाई! वह चुड़ैल है और डाकिन है, वह तुझे खा जाएगी।

कथाओं में तो ऐसा आता है कि भाई ! एक चुड़ैल और डाकिन ऐसी थी कि परी का रूप लेकर आयी। एकदम स्वरूपवान स्त्री बनकर आयी। (अतः) उसके प्रति मोह हो गया। फिर वह उसे खा गई! ऐसी-ऐसी कथाएँ आती हैं। इसका अर्थ क्या हुआ ? कि डाकिन और चुड़ैल चाहे कोई भी रूप लेकर आये (परंतु) अगर इसकी जाति की पहचान हो गई, फिर बात खत्म! फिर उसकी सुंदरता पर मोह नहीं होता।

मुमुक्षु :- शुभराग धर्म का भेस लेकर आता है न!

पूज्य भाईश्री :- हाँ, शुभराग धर्म का भेस लेकर आता है।

मुमुक्षु :- कठिन लगता है।

पूज्य भाईश्री :- ऐसा सुना नहीं है इसलिए कठिन लगता है। दूसरे प्रकार से सुना है - यह कर्त्तव्य है, आप ऐसा करो, यह धर्म का कारण है, धर्म की नीव है, ऐसा करते-करते धर्म होगा, परंपरा से होगा, ऐसा काफी कुछ उलटा ग्रहण किया है, इसलिए कठिन लगता है। वरना है तो मीठा अमृत जैसा!! शुद्धात्मा की ओर ले जानेवाली बात है, आनंद-अमृत का पान करानेवाली है। सहज, सरल और सुगम है। इतना कठिन नहीं है!

(जिसने कभी) खुन देखा न हो वह आपरेशन (शल्यक्रिया) कैसे देख सकेगा? थोड़ा-सा खून निकलते ही दुःखी-दुःखी हो जाये। काँटा चुभे और खून निकले या छुरी लगने से खून निकले, इतना भी देख न सके, वह (शल्यक्रिया में) छुरा भोंकने पर खून की धार बहती हो, उसे कैसे देख सकेगा? जबकि ड।क्टरों को वह सहज हो चुका है। एक साइकालजी ऐसी बन गई। मानस वैसा हो चुका। फट से काटेंगे। दर्दी ज़ोर से चिल्लायेगा वह उसे दिखेगा भी नहीं और सुनाई भी नहीं देगा। यह फोड़े पर जब छुरी चलाते हैं, दबाते हैं, जिसे स्पर्श करना भी मुश्किल हो उसपर तीक्ष्ण धारवाली छुरी चलाते हैं। जैसे तरबूज में छुरी न चलाते हो वैसे करते हैं।

(यहाँ) कहते हैं कि यह तो मानसिक तैयारी का सवाल है। समझ में एक मानसिक तैयारी हो गई कि यह शुभ राग की चाहे जितनी प्रशंसा, तारीफ व महिमा सुनी है, परंतु 'सत्पुरुष - प्रमाणपुरुष' ऐसा कहते हैं कि इससे प्रेम करने जैसा नहीं है। वह तो डाकिन और चुड़ैल जैसी जाति है। उससे प्रेम किया तो वह तुझे निगल जाएगा - खत्म हो जाएगा। फिर जीव को ऐसा

नहीं लगता कि ये क्यों ऐसा कहते हैं ? इतना कड़क क्यों कहते हैं ? यह बात नहीं रहेगी।

(अब कहते हैं) **'पापरूपी राग की तो क्या बात,...'** वह तो करने योग्य ही नहीं है वह तो निर्विवाद है। **'परंतु जिन्होंने शुभराग, हजारों रानियाँ छोड़कर, राजपाट छोड़कर, पंचमहाव्रत के शुभराग से प्रेम किया है - वे आनंदस्वरूप आत्मा को घायल करते हैं, उसकी हत्या करते हैं।'** हत्या करते हैं। ठीक! जो राग के, अशुभ राग के प्रपंच में रचा-पचा है उसका आत्महित होगा, ऐसा तो खैर कोई नहीं कहता। (तो फिर) धर्मात्मा कोई ऐसी बात करे यह तो प्रश्न ही नहीं है। परंतु शुभराग और वह भी कैसा शुभराग? कि वैराग्य में आकर जो हजारों रानियों को छोड़े, यहाँ तक कि हजारों रानियों के वियोग के कल्पांत की ओर देखते तक नहीं। क्योंकि जब वे रानियों को छोड़ते हैं तब उनको वैराग्य आया है, परिवार में भी सबको वैराग्य आ गया सो बात तो है नहीं। तो क्या ये निर्दय नहीं हुए ? लेकिन वह दृष्टिकोण यहाँ लागू नहीं कर सकते। जब कोई निर्दोषता में आगे बढ़ना चाहता है तब राग के वश दुःखी होनेवाले पर निर्दयता है, ऐसा आरोप नहीं कर सकते। ऐसा यह विषय है और ऐसा तो हरएक विषय में बनेगा।

शराब का निषेध करने से कलाल का धंधा तो टूटेगा, टूटेगा और अवश्य टूटेगा। कलाल मतलब शराब बेचनेवाला। अभी ये Wine shop जो चलाते हैं वे सब सुधरे हुए कलाल हैं। परंतु तब कोई ऐसा कहे कि उसका धंधा टूट जाएगा और उसकी रोज़ी-रोटी को आप लात मार रहे हो, तो क्या करना ? कहना होगा कि भाई ! यह तो अनिवार्य है। इसमें दूसरा कोई उपाय नहीं है। यह करना अनिवार्य है। अगर उसके पुण्य होंगे तो किसी दूसरे व्यवसाय से पेट भरेगा, लेकिन इसके लिए शराब का अनुमोदन कर लें, ऐसा तो नहीं बन सकता।

सत्-असत् के विषय में ठीक वैसा ही है। आप सत् की प्रसिद्धि करने जाओगे तब इसमें असत्य का निषेध होता है। तब कोई ऐसा कहे कि आप दूसरों पर द्वेष करते हो, परंतु वहाँ द्वेष करने का हेतु नहीं है। हेतु तो सत्य के स्थापन का है, सत् को प्रसिद्ध करने का है। तब अनिवार्यरूप से Side effect कोई न कोई ऐसी आयेगी, उसको ऐसा आरोप नहीं दे सकते। (अतः) आप असत् के प्रति द्वेष करते हो - यह प्रश्न ही नहीं है।

(यहाँ) कहते हैं कि **'जिन्होंने शुभराग, हज़ारों रानियाँ छोड़कर, राजपाट छोड़कर पंचमहाव्रत के शुभराग से प्रेम किया है...'** इसमें क्या है इसप्रकार त्याग करनेवाले जो सम्यग्दृष्टि होते हैं उनकी तो पूर्व की संग सहित स्थिति भी उनके परिवार आदि के साथ इतनी सज्जनतापूर्ण होती है कि, एक तो ममत्ववाला जीव हो उसमें सज्जनता मिलने से ममता बढ़ा ली हो। इस ममता के तीव्र राग वश जब मालूम हो कि अरे...! ये तो हमें छोड़ रहे हैं ! तब मृत्यु तुल्य दुःख होता है। कैसा दुःख होता है? मृत्यु के वक्त स्वजन के वियोग का दुःख होवे इतना दुःख होता है। परंतु इसका अन्य कोई (उपाय नहीं है)। जब परिणाम बदल गये और राग रहित परिणाम हो गये फिर उसे राग का रंग चढ़ा नहीं सकते। यह परिस्थिति स्वतः पैदा होती है।

कहते हैं कि ऐसा शुभराग, पर पदार्थ के संगमें से दूर होकर असंगता में रहने का जो शुभराग है, इतना ही नहीं अन्य जीवों की (यानी कि) किसी एकेन्द्रिय पर्यंत के जीव को भी दुःख न हो, इसकी हिंसा न हो, उसे दुःख न हो, जिसके कारण मन-वचन-काया को संयमित रखने के लिए पंचमहाव्रत, २८ मूलगुण का जो शुभराग आता है, उस शुभराग का भी प्रेम कर्त्तव्य नहीं है, ऐसा कहना है। ऐसे शुभराग का प्रेम भी कर्तव्य नहीं है। हालाँकि इस शुभराग से भी शुद्धात्मा के - अभेद आत्मा का जो सूक्ष्म विकल्प है इसकी कोटि ऊँची है। इसकी मंदता अधिक है। वह शुभराग तो मिथ्यादृष्टि को भी होता है। इसकी (पंचमहाव्रतादि के विकल्प की जाति) से (अभेद आत्मा के विकल्प) की जाति काफी उच्च

स्तर की है। परंतु लोगबाग उसे तो नहीं समझ सकते, लेकिन इसे समझ सकते हैं (इसलिए) समर्थ दृष्टांत के रूप में कहा जाता है।

कहते हैं कि ऐसे शुभराग का प्रेम (अर्थात्) ऐसा जो राग का राग, वह भी आनंदस्वरूप का घात करता है, आनंद को उत्पन्न नहीं होने देता। राग चाहे जैसा भी हो (परंतु) राग का राग कर्त्तव्य नहीं है। सम्यग्दृष्टि को राग होता है, परंतु उन्हें राग का राग नहीं होता कि यह राग ठीक है - ऐसा उन्हें राग नहीं होता। यह राग भी छोड़ने योग्य है - ऐसा उन्हें ज्ञान वर्तता है। अतः उनका परिणमन ज्ञानमय है, ऐसा कहा जाता है।

जिसको राग का राग है उसे अनंतानुबंधी का राग है। क्योंकि फिर उसका राग... फिर उसका राग... राग का राग... राग का राग, उसे अनंतानुबंधी का राग कहा जाता है। जो कि मिथ्यादर्शन सहित होता है।

(अब कहते हैं) **'वीतरागभाव धर्म है, किन्तु जो रागभाव से धर्म मनवाते हैं वे वीतराग के शत्रु हैं, पापी और मिथ्यादृष्टि हैं।'** वीतराग के मार्ग में **'वीतराग के शत्रु हैं'** ऐसा कहते हैं। 'मार्ग के लूटेरे हैं।' गुरुदेव तो यहाँ तक कहते थे। बहुत कड़क भाषा का प्रयोग करते थे - मार्ग के लूटेरे हैं। जैसे बीच रास्ते पर रोककर कोई लूट ले वैसे ये मार्ग को लूटते हैं।

अन्यमत में तो शुभराग को उपादेय मानकर कई बातें चलती हैं। परंतु वर्तमान प्रसिद्ध संप्रदाय के बुद्धिमान् जीवों में - जैन संप्रदाय के बुद्धिमान् जीवों में यह तत्त्व दाखिल हो चुका है। अरे ! गुरुदेवश्री को सुने हुए कुछएक अपने विद्वानों में भी यह तत्त्व दाखिल हो चुका है !! जैसे यूँ ही राग का सीधा निषेध नहीं करना चाहिए, वह तो परंपरा से मोक्ष का कारण है। राग बिना नहीं चलेगा, शुभ तो करना ही होगा। ऐसी परिस्थिति धीरे-धीरे शरू हो चुकी है।

देखिये ! गुरुदेव ने तो कितना कड़क विषय लिया है! 'चुड़ैल है, डाकिन है !!' वास्तव में तो वीतरागभाव धर्म है, इसे कोई रागभाव से धर्म मनवाये, उसे साधन कहकर धर्म मनवाये, या परंपरा में स्थान देकर धर्म मनवाये, वे वीतराग के वैरी हैं, अरिहंत के वैरी हैं, मुनियों व आचार्यों के वैरी हैं, अनंत ज्ञानियों के भी वैरी हैं, ऐसा कहा! वह महापापी व मिथ्यादृष्टि है। फिर भले ही वह किसी यम-नियम-संयम का पालन करता हो और अन्य छोटे-छोटे पाप भी न करता हो, फिर भी वह महापाप कर रहा है ! ऐसा कहते हैं। महापापी है, मिथ्यादृष्टि है, पूरे मार्ग को उखाड़ने की प्रवृत्ति है !!

*

आभार

'स्वानुभूतिप्रकाश' (मार्च-२०२४, हिन्दी एवं गुजराती) के इस अंककी समर्पण राशि स्व. ललिताबहिन देसाई तथा स्व. छोटालाल देसाई हस्ते श्रीमती ज्योतिबहिन उदाणी, U.S.A. की ओर से ट्रस्टको साभार प्राप्त हुई है। अतएव यह पाठकों को आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।

(पृष्ठ संख्या १८ से आगे...)

असल में बात इतनी-सी ही है कि 'इधर में (अंतर में) जम जाना चाहिए, त्रिकाली अस्तित्व में प्रसर जाना चाहिए।' (अस्तित्व में प्रसर जाना अर्थात् परिणाम अंतर्मुख - स्वसन्मुख होकर अपने पूरे क्षेत्र में व्याप्य-व्यापकभाव से स्वयं का स्वभावरूप अनुभव करना।) (५२९)

*

पहले अपनी (निश्चय) प्रभावना करके... अपना सुख पीने में मग्न रहो... बाद में जैसा-जैसा योग होता है वैसा-वैसा विकल्प आता रहता है। (५५८)

*

(मूलतः) 'वर्तमान में ही पूर्ण हूँ,' (पर्याय में भी) प्रयोजन सुख का है, ज्ञान का नहीं। (५९२)

*

प्रश्न :- जीव का कर्तव्य क्या ?

उत्तर :- कर्तव्य पर्याय में है। परमार्थ से कोई कर्तव्य नहीं। प्रमाणज्ञान का प्रयोजन तो 'निश्चय' को प्रकाशित करना है। (जीव को कर्तव्य की मुख्यता के नामपर भी कर्ताबुद्धि दृढ हो जाने की संभावना रहती है। वस्तुतः सभी प्रकार के दोषों से छूटने / बचने तथा सर्व श्रेय का मूल निश्चयपरमार्थस्वरूप का 'ज्ञान' है अतः मूल प्रयोजनभूत विषय 'मूलस्वरूप' ही है; जिसके श्रद्धान-ज्ञान से पर्यायविषयक उत्तर प्रयोजन की सिद्धि स्वयं हो जाती है।) (५९५)

*

(पृष्ठ संख्या ०२ से आगे...)

नहीं है। जैसे मेरे घरवाले नाराज़ हो जायेंगे तो ऐसे डरने जैसा नहीं है। जिसकी होनहार अच्छा हो, महा भाग्यवान हो उसे यह उपाय मिलता है, ऐसा है। चाहे किसीको भी मिल जाये ऐसा नहीं है। और बहुत अल्प जीवोंको यह राह मिलती है सबको नहीं मिलती।

अतः तीव्रकषायके रसवाले परिणाम आत्मार्थीको नहीं होते, यह आत्मार्थीकी भूमिकाकी मर्यादा है। यह आत्मार्थीकी भूमिकाकी मर्यादा है। तीव्ररसयुक्त नहीं होते। संसारके कार्य और संसारके परिणाम होते हैं, परंतु तीव्र रसवाले नहीं होते - चिकनाहट नहीं होती। चिकनाहट छोड़ देनी चाहिये। और चिकनापन करना भी क्यों? ऐसा कौनसा बड़ा नुकसान हो जाता है कि, तू इसे छोड़ नहीं पाता है? ऐसा पूछते हैं। सबकुछ अनन्त बार हो चुका है। हीनातिहीन संयोग व उत्कृष्टसे उत्कृष्ट संयोग अनन्तबार हो चुके। वर्तमानमें प्राप्त तो सबकुछ सामान्यसा है। संयोग होना और वियोग होना सब सामान्य बात है। इसके पीछे आत्माको अहितमें धकेल देना उचित नहीं है। इसकी कीमत छोड़ देना। अगर इसकी कीमत नहीं छोड़ी तो तू डुब जायेगा। या तो उड़ा दे या खुदको डुबो दे। दोनोंमें से एक होगा। हालाँकि आत्माको डुबाने जैसा नहीं है।

(प्रवचनांश...स्वानुभूतिदर्शन प्रवचन नं.-३९३)

पूज्य बहिनश्री चंपाबेनकी विडीयो तत्त्वचर्चा
मंगल वाणी-सी.डी. १४-A

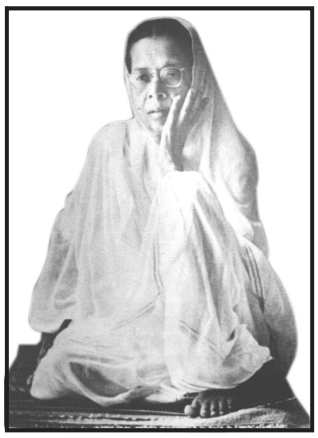

स्वयं परिणमनेवाला (है)। स्वयं ही विभावदशारूप परिणमता है, स्वभावरूप स्वयं परिणमे, स्वयं स्वयं के आश्रयसे परिणमता है, परके आश्रयसे कोई परिणमता नहीं। पर्याय द्रव्य के आश्रय बिना अलग नहीं परिणमती। द्रव्य के आश्रयसे पर्याय परिणमती है। द्रव्य कूटस्थ नहीं है कि परिणमता नहीं। द्रव्य स्वयं पर्यायरूप परिणमता है। द्रव्य ऐसा कोई कूटस्थ नहीं है कि उसमें कोई परिणामिक भाव ही नहीं है। तो ये बन्ध और मोक्ष कुछ होता ही नहीं, यदि द्रव्य नहीं परिणमता हो तो। तो यह संसार कैसा? यह मोक्ष की पर्याय प्रगट करनी, साधना करनी, गुरु उपदेश दे उसका विचार करके खुद को निर्णय करना, वह सब, द्रव्य परिणमता ही नहीं हो तो वह सब किसके लिये है? वह सब तो बाहर होता है, अपने में तो कुछ होता नहीं। इसलिये द्रव्य स्वयं विभावरूप परिणमे, स्वभावरूप स्वयं परिणमे। स्वयं ही परिणमता है, अन्य कोई नहीं परिणमता। द्रव्य स्वयं ही पर्याय को पहुँचता है और पर्याय द्रव्य के आश्रयसे ही परिणमती है। भिन्न-भिन्न टुकड़े नहीं है।

मुमुक्षु :- कोई जगह ऐसा आता है कि विभाव ऊपर-ऊपर तैरता है। उसका अर्थ क्या?

समाधान :- विभाव अन्दर प्रवेश नहीं करता। विभाव उसका स्वभाव नहीं है। विभाव है वह चैतन्य में (नहीं प्रवेश करता)। चैतन्य में ऐसे राग-द्वेष (होते हैं) वह उसका मूल स्वभाव नहीं है, इसलिये ऊपर तैरते हैं। पर्याय स्वयं अपने पुरुषार्थ की मन्दतासे पर्याय होती है, लेकिन वह उसका मूल स्वभाव नहीं है।

जैसे स्फटिक का स्वभाव निर्मल (है)। स्फटिक निर्मल है, लेकिन उसे निमित्त के कारण, लाल-पीले फूल के कारण स्फटिक पीला या लाल दिखता है वह सब ऊपर-ऊपर है, उसके अन्दर नहीं है।

ऐसे आत्मा में राग-द्वेषरूप परिणमे स्वयं, परन्तु उसमें निमित्त कर्म का निमित्त है। स्वयं के पुरुषार्थ की मन्दतासे परिणमे स्वयं, लेकिन उसके मूल में, उसके मूल स्वभाव में लाल या पीला या राग या द्वेष स्वभावरूप स्वयं परिणमता नहीं इसलिये ऊपर-ऊपर है।

जैसे स्फटिक में ऊपर-ऊपर परिणमता है, लेकिन वह ऊपर-ऊपर है। स्वयं में श्वेतपना जैसे तद्गत है, वैसा यह लाल-पीला तद्गत अंतर में नहीं है।

मुमुक्षु :- मूल स्वभाव में नहीं है।

समाधान :- मूल स्वभाव में नहीं है। ऐसे आत्मा मूल स्वभावसे ज्ञायक है। वैसे यह राग-द्वेषादि ऊपर-ऊपर है। पर्याय अपनी होती है, परन्तु स्वभाव उसका नहीं है। ऊपर-ऊपर तैरते हैं।

मुमुक्षु :- प्रत्येक द्रव्य अपने गुण-पर्यायरूप परिणमते हैं और अन्य रूप नहीं परिणमते। इसमें दो द्रव्य की स्वतंत्रता बतायी। परद्रव्य प्रति का मोह यानी एकताबुद्धि रहनेवाली नहीं। लेकिन पर्याय में जो राग उत्पन्न होता है और एक समय की पर्याय में एकत्वपना, वह जाननेसे कैसे टले?

समाधान :- पर्याय में जो रागादि होते हैं वह समझे कि ये मेरा स्वभाव नहीं है। यह तो पुरुषार्थ की मन्दतासे (होते हैं), कर्म का निमित्त है, यह मेरा मूल स्वभाव नहीं है। शुद्ध स्वभाव को पहचाने, तत्त्व का मूल स्वरूप पहचाने। उसके मूल तत्त्व का स्वरूप क्या है? द्रव्य-गुण-पर्याय को पहचाने लेकिन ये तो विभाव पर्याय (है)। इस तत्त्व का मूल स्वरूप क्या है? तत्त्व के मूल को पहचाने तो वह राग-द्वेष और एकत्वबुद्धि टूट जाती है कि यह मेरा मूल स्वभाव नहीं है। यह स्वभाव तो आकुलता और दुःखरूप है, यह स्वभाव मेरा नहीं है। जो अपना स्वभाव हो वह स्वयं को ही आकुलता और दुःखरूप हो, ऐसा मेरा स्वभाव नहीं है। ऐसा विचार करे तो छूट जाता है। मूल तत्त्व को पहचाने तो वह भी छूट जाता है।

मुमुक्षु :- अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में मूल स्वभाव को पहचाने-ध्रुव स्वभाव को, तो पर्याय की एकता भी टूट जाये।

समाधान :- पर्याय की एकता छूट जाती है, एकत्वबुद्धि टूट जाती है। फिर पुरुषार्थ की मन्दतासे बाकी रहे वह अलग बात है। बाकी उसे टूट जाती है कि यह मेरा स्वभाव नहीं है।

*

सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई के समाधिदिन (चैत सुदि ५) के उपलक्ष में तीन दिवसीय धार्मिक कार्यक्रम

१) चैत सुदि त्रीज, गुरुवार (दि.११-४-२४) से पांचम, शनिवार (दि.१३-४-२४)
सुबह : ७.०० से ८.०० पू.भाईश्री ऑडियो प्रवचन
स्थल : **'ज्ञानमात्र'** समाधि मंदिर, भावनगर
१०.०० से ११.३० मंडल विधान पूजन
स्थल : दिगंबर जैन मंदिर, जूनी माणेकवाड़ी, भावनगर
दोपहर : ४.३० से ५.३० पू.भाईश्री गुणानुवाद
स्थल : श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
रात्रि : ८.०० से ९.०० पू.भाईश्री विडीयो प्रवचन
स्थल : श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
२) चैत सुदि पांचम, समाधि दिन प्रातःकाल ४.०० से ४.३० वैराग्य भक्ति एवं श्रद्धांजली
स्थल : श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर

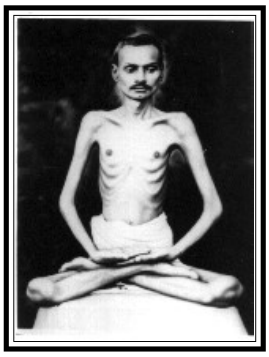

परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी द्वारा लिखित आध्यात्मिक पत्र

पत्रांक-३६९

बंबई, वैशाख वदी ९ ,शुक्र ,१९४८

सब कुछ हरिके अधीन है।
पत्रप्रसादी प्राप्त हुई है।
यहाँ समाधि है।

सविस्तर पत्र अब फिर,
निरुपायताके कारण लिखा नहीं जा सकता।

*

पत्रांक-३७०

बंबई, वैशाख वदी ११, रवि,१९४८

हृदयरूप श्री सुभाग्यके प्रति,

अविच्छिन्नरूपसे जिन्हें आत्मध्यान रहता है, ऐसे श्री.....के प्रणाम पहुँचे।

जिसमें अनेक प्रकारकी प्रवृत्ति रहती है ऐसे योगमें अभी तो रहते हैं। उसमें आत्मस्थिति उत्कृष्टरूपसे विद्यमान देखकर श्री.....के चित्तको अपने आपसे नमस्कार करते हैं।

बहुत प्रकारसे समागमकी और बाह्य प्रवृत्तिके योगत्यागकी जिनकी चित्तवृत्ति किसी प्रकारसे भी रहती है ऐसे हम अभी तो इतना लिखकर रुक जाते हैं।

*

पत्रांक-३७१

बंबई, वैशाख वदी १३, मंगल, १९४८

श्री कलोलवासी जिज्ञासु श्री कुंवरजीके प्रति,

जिन्हें निरंतर अभेदध्यान रहता है ऐसे श्री बोधपुरुषके यथायोग्य विदित हो।

यहाँ अन्तरमें तो समाधि रहती है, और बाह्य उपाधियोग रहता है; आपके लिखे हुए तीन पत्र प्राप्त हुए हैं, और उस कारणसे उत्तर नहीं लिखा।

इस कालकी विषमता ऐसी है कि जिसमें बहुत समय तक सत्संगका सेवन हुआ हो तो जीवमें लोकभावना कम होती है; अथवा लयको प्राप्त होती है। लोकभावनाके आवरणके कारण जीवको परमार्थभावनाके प्रति उल्लासपरिणति नहीं होती, और तब तक लोकसहवास भवरूप होता है।

जो सत्संगका सेवन निरंतर चाहता है, ऐसे मुमुक्षु जीवको, जब तक उस योगका विरह रहे तब तक दृढभावसे उस भावनाकी इच्छा करके प्रत्येक कार्यको करते हुए विचारसे प्रवृत्ति करके, अपनेमें लघुता मान्य

करके, अपने देखनेमें आनेवाले दोषकी निवृत्ति चाहकर सरलतासे प्रवृत्ति करते रहना, और जिस कार्यसे उस भावनाकी उन्नति हो ऐसी ज्ञानवार्ता या ज्ञानलेख या ग्रंथका कुछ कुछ विचार करते रहना यह योग्य है।

जो बात ऊपर कही है उसमे बाधा करनेवाले बहुतसे प्रसंग आप लोगोंके सामने आया करते हैं ऐसा हम जानते है; तथापि उन सब बाधक प्रसंगोंमें यथासंभव सदुपयोगसे विचारपूर्वक प्रवृत्ति करनेकी इच्छा करें, यह अनुक्रमसे होने जैसी बात है। किसी भी प्रकारसे मनमें संतप्त होना योग्य नहीं है। जो कुछ पुरुषार्थ हो उसे करनेकी दृढ़ इच्छा रखना योग्य है, और जिसे परम बोधस्वरूपकी पहचान है, ऐसे पुरुषको तो निरंतर वैसी प्रवृत्ति करनेके पुरुषार्थमें परेशान होना योग्य नहीं है।

अनंतकालमें जो प्राप्त नहीं हुआ है, उसकी प्राप्तिमें अमुक काल व्यतीत हो तो हानि नहीं है। मात्र अनंतकालमें जो प्राप्त नहीं हुआ है उसके विषयमें भ्रांति हो जाये, भूल हो जाये वह हानि है। यदि ज्ञानीका परम स्वरूप भासमान हुआ है, तो फिर उसके मार्गमें अनुक्रमसे जीवका प्रवेश होता है; यह सरलतासे समझमें आने जैसी बात है।

सम्यक् प्रकारसे इच्छानुसार प्रवृत्ति करें। वियोग है तो उसमें कल्याणका भी वियोग है, यह बात सत्य है, तथापि यदि ज्ञानीके वियोगमें भी उसीमें चित्त रहता है, तो कल्याण है। धीरजका त्याग करना योग्य नही हैं।

श्री स्वरूपके यथायोग्य

*

'स्वानुभूतिप्रकाश' (हिन्दी) के स्वामित्वका विवरण फोर्म नं.४, नियम नं. ८

पत्रका नाम	:	'स्वानुभूतिप्रकाश' (हिन्दी)
प्रकाशन स्थल	:	श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, ५८० जूनी माणेकवाडी, भावनगर-३६४००१
प्रकाशन अवधि	:	मासिक
मुद्रक	:	अजय ऑफसेट, १५/सी बंसीधर मिल कम्पाउन्ड, बारडोलपुरा, अहमदाबाद-३८०००४
प्रकाशकका नाम	:	श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, ५८० जूनी माणेकवाडी, भावनगर-३६४००१
संपादकका नाम	:	श्री राजेन्द्र जैन, (भारतीय), ५८० जूनी माणेकवाडी, भावनगर-३६४००१
स्वामित्व	:	श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, ५८० जूनी माणेकवाडी, भावनगर-३६४००१

मैं, राजेन्द्र जैन, एतद द्वारा घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकृत जानकारी और विश्वास अनुसार उपरोक्त विवरण सत्य है।

ता. ३१ मार्च, २०२४

राजेन्द्र जैन

मेनेजिंग ट्रस्टी-श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट

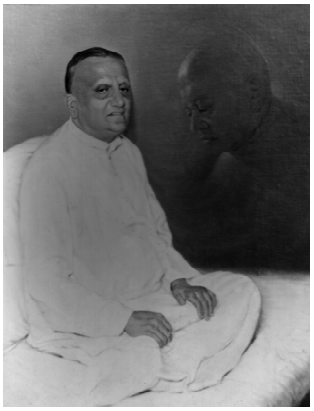

'द्रव्यदृष्टि प्रकाश'में से 'प्रयोजन (पर्याय अपेक्षासे कर्तव्य)' सम्बन्धित पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजी के चयन किये गये वचनामृत

ज्ञानका विषय, दृष्टिके विषयका प्रयोजन साधने जितना ही लक्ष्यमें लेना ठीक है; बाकी उसका (इससे अधिक) प्रयोजन नहीं है। (प्रयोजनभूत 'स्वरूप' के अलावा जाननेमें आते हुए सभी ज्ञेयोंमें ज्ञानको अपना प्रयोजन भासित नहीं होता। (१४)

*

'अपने सुख-धाममें सदा जमे रहना' बस! - यही बात बारह अंगका एकमात्र सार है। (१९२)

*

असल में आत्मा कैसे प्राप्त होवे - यही एक ध्येय होना चाहिए; दूसरी-दूसरी बातों से क्या प्रयोजन? (२७३)

*

बाहर से अपना कोई प्रयोजन ही नहीं, तो बाह्य पदार्थों से तो सहज ही उदासीनपना रहे ही। (२८३)

*

नित्य पड़खा और अनित्य पड़खा - ये दोनों पड़खे एक वस्तु के हैं; अब मतलब प्रयोजन-सिद्ध करने का है तो वह तो नित्य पड़खे को मुख्य करने से और अनित्य पड़खे को गौण करने से ही सिद्ध होता है। (३०९)

*

'स्वद्रव्य में जम जाना' यह एक ही कर्तव्य है, वह भी परिणाम की अपेक्षा से। 'मेरी' अपेक्षा से तो 'मैं' कृतकृत्य ही हूँ, कुछ भी कर्तव्य नहीं; 'मैं' तो अनंत वीर्य की खान हूँ। (उसमें - मेरे ऐसे स्वरूप में - 'कुछ भी करना' - यह भ्राँति है।) (३१८)

*

सब शास्त्रों का मूल तो अनुभूति पर ही आना है। (३४०)

*

मूल बात में अपेक्षा लगाता है तो मुझे तो खटकता है, (क्योंकि) उसमें जो तीखाश होती है वह टूट जाती है। अपेक्षा लगाने से ढीलापन हो जाता है। (मूल बात पर ज़ोर देते वक़्त कोई अपेक्षा लगाकर, दूसरी अपेक्षा से ऐसा भी है - ऐसा कहने से तो मूल बात गौण हो जानेसे प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, इसलिए खटकता है।) (वस्तु अनंत सामर्थ्यवंत है। अतः उसके प्रति ज़ोर (भींस/दबाव) आता है। परंतु वहीं दूसरी अपेक्षा खोल कर वैसे ज़ोर को ढीला करना, वह अपेक्षा संबंधित विपर्यास है जो खटकता है।) (३५१)

(अनुसंधान पृष्ठ संख्या १३ पर..)

भावना की ताकत!!

-पूज्य भाईश्री शशीभाई

यथार्थ मुमुक्षुता मोक्षमार्गमें प्रवेशकी पूर्वभूमिका है। अथवा मोक्षमार्गमें प्रवेशके लिये कारणभूत ऐसी पूर्व भूमिका है। इसलिये यथार्थ मुमुक्षुता होनी आवश्यक है। ऐसी यथार्थ मुमुक्षुकी भूमिका कब आये? सो बात यहाँसे निकलती है कि, जिसको आत्मकल्याणकी रुचि हो, आत्मकल्याणकी आवश्यकता लगी हो और जिसको आत्मकल्याणकी भावना होती है उसमेंसे सब उत्पन्न होता है। परिभ्रमणकी वेदना भी आत्मकल्याणकी भावनामें से ही उत्पन्न होती है। और जिनको भावना होती है उसे अपने आत्माके अहितकारक कितने ही प्रकारके परिणाम तो उत्पन्न ही नहीं होते। क्योंकि वह जीव भावनायुक्त रहा करता है इसलिये अन्य दूसरे-दूसरे उदय आने पर उसका चित्त कहीं नहीं लगता। सहज उदासीनता बनी रहती है। जिन्हें भावना व उदासीनताका अभाव होता है व उदय आने पर उसमें एकाकार हो जाता है, उदय आते ही उसमें तद्रूप हो जाता है, घुस जाता है और परिणाम बिगड़ जाते हैं।

अतः भावना है सो उदयमें एकाकार नहीं हो जानेके लिये रक्षकरूप प्रतिबंधक भाव है। अर्थात् उदयमें जुड़नेसे रोधक परिणाम है। और ऐसी भावना कोई भी जीव कर सकता है। बिलकुल नया हो तो भी कर सकता है। इसके लिए कोई पूर्व शर्त नहीं है। कोई पूर्व शर्त नहीं है। ऐसी सुगमता और सुविधा इस जैनमार्गमें है। भावना है सो आत्मउन्नतिके सर्व परिणामोंकी नींव है। आत्माकी उन्नति होनेकी नींवमें आत्मकल्याणकी भावना निहित है। और इस भावनाकी नींव जितनी मज़बूत उतना आगेका कार्य सरल व शीघ्रतासे होता है। और ऐसी नींव प्रस्थापित करनेके लेऐ कोई पूर्व शर्त नहीं! unconditional कोई भी जीव ऐसी भावनामें आ सकता है।

बहुत पापार्जन यानी आखरी हदके पापके फलमें सातवीं नरकमें गया हो फिर भी ऐसी भावना यदि उत्पन्न होवे तो परिणाम पलट जाए! अर्थात् इसके लिए ऐसी कोई पूर्व शर्त है ही नहीं कि पहले तुझे इतना पुण्यबंध करना होगा, इतना दान करना होगा। इतने पुण्य-दान करनेके पश्चात् ही तुझे ऐसी भावना हो सकती है। इस तरह घबरानेकी किसीको ज़रूरत नहीं है। बिलकुल खुला मैदान है। चाहे कोई भी जीव हो, कैसे भी पूर्व परिणाम करनेवाला जीव हो गुलाँट खाकर एकदम यदि स्वरूपप्राप्तिकी भावनामें आ जाये तो पूरी दिशा पलट जाये। परिणामोंका पूरा प्रवाह और परिणामकी पूरी जाति बदल जाये ऐसा है। इसप्रकार भावनाका विषय बहुत बलवान है और बहुत सुंदर है।

(प्रवचनांश... 'स्वानुभूतिदर्शन' प्रवचन क्र.३९४)

REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2024-2026
RENEWED UPTO : 31/12/2026
R.N.I. NO. : 69847/98
Published : 10th of Every month at BHAV.
Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS
Total Page : 20

'सत्पुरुषों का योगबल जगत का कल्याण करे'

... दर्शनीय स्थल...

श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
भावनगर

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री राजेन्द्र जैन द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर मिल कम्पाउन्ड, बारडोलपुरा, अहमदाबाद-३८० ००४ से मुद्रित एवम् ५८० जूनी माणिकवाडी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर-३६४ ००१ से प्रकाशित
सम्पादक : श्री राजेन्द्र जैन -09825155066

Printed Edition : 3795
Visit us at : http://www.satshrut.org

If undelivered please return to ...
Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001

mayur pr00338 M 9374825041